सम्पादकीय

गणाधिप नमस्तुभ्यं सर्वविघ्नप्रशान्तिद।
उमानन्दप्रद प्राज्ञ त्राहि मां भवसागरात्।।
हरानन्दकर ध्यानज्ञानविज्ञानद प्रभो।
विघ्नराज नमस्तुभ्यं सर्वदैत्यैकसूदन।।
सर्वप्रीतिप्रद श्रीद सर्वयज्ञैकरक्षक।
सर्वाभीष्टप्रद प्रीत्या नमामि त्वां गणाधिप।।

श्री गणेशजी! आपको नमस्कार है। आप संपूर्ण विघ्नों की शांति करने वाले उमा पुत्र आनन्ददायक तथा परम बुद्धिमान् हैं, आप भवसागर से मेरा उद्धार कीजिये। विघ्नराज! आप भगवान् शंकर को आनंदित करने वाले, अपना ध्यान करने वालों को ज्ञान और विज्ञान के प्रदाता तथा संपूर्ण दैत्यों के एकमात्र संहारक हैं, आपको नमस्कार है। गणपते! आप सबको प्रसन्नता और लक्ष्मी देने वाले संपूर्ण यज्ञों के एकमात्र रक्षक तथा सब प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं, मैं प्रेमपूर्वक आपको प्रणाम करता हूँ।

जीवन में सार्थकता लाना विशेष महत्व का कार्य है। हमारे ऋषि-मुनियों ने इतना ज्ञान हमारे सम्मुख रखा है जिसका अनुमान लगाना, अर्थात् ज्ञान से ज्ञान को प्राप्त करना जीवन की सार्थकता है। अंधकार मिटाने के लिए दैविक आराधना, पूजा अर्चना विशेष पर्वों पर करते रहने का विधान है। जैसा कि ग्रहण काल में उत्तम यौगिक क्रिया, पूजा अनुष्ठान, मंत्र सिद्धि, सरोवर स्नान, जप दान आदि का विशेष महत्व है। इसका प्रमाण शास्त्रों में विद्यमान है। इस शुभ अवसर पर शास्त्रीय प्रयोग, जाप, हवन, पूजन आदि से कष्टों को दूर करना चाहें, तो उत्तम फलदायक समय रहता है और जब ग्रहण, कृष्ण जन्माष्टमी, गणेश चतुर्थी और श्राद्ध जैसा पुण्य अवसर भी इस अवसर के साथ मिल मिल जाये तो वह अवसर स्वयं सिद्धिकाल बन जाता है। यदि आप में साहस है, कुछ अद्भुत करने की, चुनौती सहने की क्षमता है, साधारण से अलग है, तो यह अवसर आपके लिये ही है और जब साक्षात् शिवस्वरूप स्वयं गुरूदेव ही आपके साथ हो तो असफलता का प्रश्न ही नहीं है। स्वयं देव और किन्नर जिस अवसर के लिये बेताब रहते हैं, वही अवसर आपके समक्ष है सिद्धियों का अमृत-कलश लिये, आपको पिलाने के लिये।

विघ्नों का अंत नहीं होता है तो वह विघ्नहर्ता प्रथम पूज्य गणपति की पूजा करता है क्योंकि गणाध्यक्ष गणपति विघ्नों को हरने वाले हैं। महाराष्ट्र में तो लोग अपने जन्म दिवस से भी ज्यादा महत्व देते हैं गणपति देव के जन्म दिवस को, वे संपूर्ण दस दिन तक गणेश महोत्सव के रूप में मनाते हैं, वहां की छटा ही निराली है। इतने दिनों तक पर्वों का मनाना एक अकेले व्यक्ति के बस की बात नहीं, पर्व का उत्साह ही तब होता है जब व्यक्ति अपने निकट संबंधियों, अपने परिवार, अपने मित्रों के साथ मनाता है। जो पारिवारिक सदस्य उसके साथ है वे तो नई ऊर्जा, उमंग देते ही हैं लेकिन जो सदस्य आज उसके बीच नहीं है। उनकी स्मृति होना जायज है।

कृतज्ञता की स्मृति में प्रत्यक्ष पितृ ऋण है। क्योंकि शरीर को उन्हीं ने पाला पोसा बड़ा किया और योग्य बनाया एवं आश्रय दिया है। उन्हीं की प्रत्यक्ष सेवा से हम इस योग्य बन सके हैं जिसमें आज है। श्राद्ध के साथ मुख्य रूप से जुड़ी व्यक्ति की श्रद्धा है, साथ ही भावना भी, इसलिए आज के दिन परिवार के व्यक्तियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार से दूर रहकर पुनीत कार्य करेंगे। श्राद्ध कर्म में खर्च किए जाने वाला धन भी ईमानदारी से कमाई किया हुआ ही होना चाहिए।

श्राद्धों को लेकर एक पौराणिक घटना महाभारत काल से भी जुड़ी मानी गयी है जिसमें कहा गया है कि-कर्ण प्रतिदिन स्वर्ण दान किया करते थे। उन्हें मरणोपरांत स्वर्ग में रहने हेतु 'स्वर्ण महल' मिला जहां प्रत्येक वस्तु सोने की थी। कर्ण इससे परेशान हो उठे। जब इसका कारण भगवान से पूछा तो पता चला कि वह प्रतिदिन सवा मन सोना दान करते थे, अन्य वस्तुओं का नहीं। यह जानकर कर्ण को बड़ा संताप हुआ व वे ईश्वर से विनती कर पंद्रह दिन के लिए पृथ्वीलोक में पुनः आए और सभी वस्तुओं का दान किया तथा मनुष्यों को भोजन करवाया। कहा जाता है कि इस कथा की स्मृति में ही पितरों के प्रति श्राद्ध मनाए जाने लगे।

श्रत् नामक वृत्ति को धारण करने का नाम श्राद्ध कहलाता है। इसी श्राद्ध भाव से संबंध रखने के कारण आश्विन का कृष्णपक्ष श्राद्ध पक्ष कहलाता है। इसमें परिजन अपने पुरखों को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। श्रद्धांजलि अर्पित करने की अनेक लोक प्रचलित पद्धतियां हो सकती है। लोक ही उनका नियामक होता है। लोक में यह विश्वास है कि पुरखों के नाम पर यज्ञ, तप, दान, स्वाध्याय आदि करना चाहिए। भूखों को भोजन कराया जाए। जरूरतमंदों की जरूरतें पूरी की जाएं। ऐसा जो कुछ किया जाएगा वह दिवंगत आत्मा को मिल जाएगा। वास्तविकता यह है कि अपने पुरखों के नाम पर पुण्य कार्य करने वाले को असीम शांति मिलती है। व्यक्ति स्वयं को कृतज्ञ मानने लगता है।

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृ भक्त्या तु मध्यमम्।
गुरूशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते।।
आसमाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरूम्।
स गच्छव्यंजसा विप्रो ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम्।।

मातृ भक्ति से यह लोक, पितृ भक्ति से अन्तरिक्ष लोक और गुरू सेवा करने से ब्रह्म लोक प्राप्त होता है। जो मनुष्य जीवन भर सेवा करता है वह बिना प्रयत्न के ही शाश्वत धर्म या स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है।

शास्त्रों में भी कहा गया है कि मनुष्य के तीन प्रत्यक्ष देव हैं- (१) माता, (२) पिता (३) गुरू। इन्हें ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उपाधि दी है। माता

जन्म देती है, इसलिए ब्रह्मा है। पिता पालन करता है, इसलिए विष्णु है। गुरू कुसंस्कारों का संहार करता है, इसलिए शंकर है। गुरू का स्थान माता-पिता के समकक्ष है। वह न केवल कुसंस्कारों की गहरी जड़ों को काटता है, वरन एक सच्चे माली की भूमिका भी अदा करता है।

सौभाग्य से ही दुर्लभ मनुष्य योनि की प्राप्ति होती है। इस योनि में मनुष्य जब आध्यात्म के मार्ग पर चलकर, अच्छे कर्म करता है, साधनाएं कर ईश्वर भक्ति में लीन रहता है तो उसे इहलोक में सुख शान्ति और मृत्यु के पश्चात् श्री वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, कैलाश आदि दिव्य लोकों की प्राप्ति होती है, इसमें संदेह नहीं है। अन्यथा पशु-पक्षी, कीट, पतंगों, सर्प-बिच्छुओं आदि स्थूलजगत की चौरासी योनियों में आत्मा भटकती रहती है और बार-बार उसे विभिन्न योनियों में जन्म लेना पड़ता है।

आधुनिक शिक्षित समुदाय विज्ञान की दुहाई देकर भूत-प्रेतादि को केवल मिथ्या भ्रम मानता है। चिकित्सा विज्ञान इनकी मानसिक व्याधियों के रूप में गणना करता हे। धर्म शास्त्र हमारे सनातन प्रमाण ग्रंथ हैं। उनमें 'अकाल-मृत्यु, दुष्कर्म, मृत्यु के उपरान्त प्रेत कल्याण के लिये किये जाने वाले कर्मकाण्डों के अभाव या उनके विधिवत् न होने आदि के कारणों से और प्रारब्धवश जीव को उक्त योनियों में भटकना पड़ता है। जहां शास्त्रों में ऐसा वर्णन है, वहां प्रेतत्वमुक्ति के विविध साधन भी बताये गये हैं। श्रीमद्भागवत् महात्म्य का धुन्धुकारी उद्धार का 'उपाख्यान' जगत में प्रसिद्ध है। गीता पाठ, गंगा स्नान, गायत्री जप, गया श्राद्ध और गौ सेवा, प्रेत मुक्ति के सर्वोत्तम सुगम उपाय हैं।

जो पितृगण दिवंगत हो चुके हैं। उनके लिये तर्पण श्राद्ध का विधान है। श्रद्धांजलि पूजा उपचार का सरलतम प्रयोग है अन्य उपचारों में वस्तुओं की जरूरत पड़ती है। वे कभी उपलब्ध होती है कभी नहीं। किन्तु जल ऐसी वस्तु है जिसे हम दैनिक जीवन में अनिवार्यतः प्रयोग करते हैं। वह सर्वत्र सुविधापूर्वक मिल भी जाता है। इसलिए पुष्पांजलि आदि श्रमसाध्य श्रद्धांजलियों में जलांजलि को सर्वसुलभ माना गया है। उसके प्रयोग में आलस्य और अश्रद्धा के अतिरिक्त और कोई व्यवधान नहीं हो सकता।

इसमें यह तर्क करने की गुंजायश नहीं है कि यह पानी उन पूर्वजों तक या सूर्य तक पहुंचा या नहीं। इसके पीछे अपनी कृतज्ञता भरी भावनाओं को सींचते रहने की अभिव्यक्ति की ही प्रमुखता है। इसलिए उसे किसी पर अहसान करने के लिए नहीं, वरन् अपनी निज की श्रद्धा को सींचते रहने के लिए किया जाता रहना चाहिए।

अपने साधनों का एक अंश पितृ प्रयोजनों के निमित्त ऐसे कार्यों में लगाया जाना चाहिए जिससे लोक कल्याण का प्रयोजन भी सधता हो। श्राद्ध रूप में ऐसे वृक्ष लगायें जायें जो किसी न किसी रूप में प्राणियों की आवश्यकता पूरी करते हों। अपने पास कृषि योग्य भूमि से थोड़ी भी जमीन बचती हो, कम उपयोगी हो तो उसमें आम, पीपल, महुआ आदि के वृक्ष लगा देने चाहिए। बेर, अमरूद तो और भी कम जगह में लग सकते हैं। यदि अपने पास जमीन न हो तो किसी की भी-सरकार की जमीन में भी वृक्षारोपण इस शर्त पर हो सकता है कि उसका स्वामित्व जमीन मालिक का ही रहे। केवल सींचने, रखवाली करने आदि की जिम्मेदारी अपने कंधे पर लेकर दूसरों की जमीन में वृक्ष लगा देने में भी पुण्यफल की प्राप्ति हो सकती है।

वृक्ष वायु शोधन करते हैं। छाया देते हैं। फल-फूल भी मिलते हैं। हरे पत्ते पशुओं का भोजन बन सकते हैं। सूखे पत्तो से जमीन को खाद मिलती है। लकड़ी के अनेकों उपयोग है। वृक्षों से बादल बरसते हैं। भूमि का कटान रूकता है। पक्षी घोंसले बनाते हैं उनकी छाया में मनुष्यों पशुओं को विश्राम मिलता है। इस प्रकार वृक्षारोपण भी एक उपयोगी प्राणी के पोषण के समान है। वृक्षों की भांति ही जलाशयों के निर्माण का भी उपयोग है। तालाबों में हर साल वर्षा के पानी के साथ मिट्टी भर जाती है और उनकी सतह ऊंची हो जाने से कम पानी समाता है जो जल्दी ही सूख जाता है। इन्हें यदि हर साल श्रमदान से गहरे करते रहा जाय तो पशुओं को पानी, सिंघाड़ा, कमल जैसी बेलें तथा तल में जमने वाली चिकनी मिट्टी से मकानों की मरम्मत हो सकती है।

मन्दिर, धर्मशाला तो कोई विरले ही धनी मानी बना पाते हैं। किन्तु उद्यान और जलाशय बनाने, साफ करने का काम ऐसा है जिसे अपने मित्र पड़ौसियों के साथ मिल-जुलकर पूरा किया जा सकता है और साथ ही उनसे किसी न किसी रूप में लाभ भी उठाया जा सकता है। इस प्रकार के उपयोगी काम वे भी कर सकते हैं जो धन खर्च करने की स्थिति में तो नहीं है, पर जो शरीर से स्वस्थ हैं और श्रमदान के रूप में पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता का भाव चरितार्थ करते रहने की स्थिति में तो हैं ही।

गाँवों के कच्चे रास्तों की टूट-फूट होती रहती है। ऊंचे-नीचे खाई खड्डे बनते रहते हैं। पड़ौसी किसान उस रास्ते की जमीन को तोड़कर अपने खेत में मिलाते रहते हैं। इस प्रकार रास्ते छोटे और ऐसे बेतुके हो जाते हैं कि उनमें से निकलने वाले मनुष्यों या जानवरों को चोट लगती, मोच आती रहती है। बैलगाड़ियां टूटती-उलटती रहती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए पूर्वजों के श्राद्ध रूप में रास्तों की मरम्मत का काम भी श्रमदान के रूप में किया जा सकता है।

इस प्रकार की समाज सेवा के कार्यों से जीवित या दिवंगत पितृ गण निश्चय ही प्रसन्न होंगे। अपने कृतज्ञता भाव को जीवित रखने का पुण्य परमार्थ तो प्रत्यक्ष ही मिलता रहेगा।

मृत्यु जीवन का एक शाश्वत सत्य है जिसका सामना एक दिन सभी को करना है। कहा नहीं जा सकता कि कब मृत्यु किसको अपने आगोश में ले ले। हमसे पहले जो हमारे बड़े बुजुर्ग इस धरती से कूच कर चुके हैं, जिनको मृत्यु प्राप्त हो चुकी है, यदि उनकी कुछ इच्छाएं अपूर्ण रहती हैं तो उनकी आत्माएं भटकती रहती हैं। जिन पितरों की आत्माएं भटक रही होती हैं, जिन्हें मुक्ति नहीं मिल पाती हैं, वे अपनी संतानों से अपनी मुक्ति की कामना करती हैं और जब संताने अपना कर्त्तव्य नहीं पूरा करती हैं, उनकी मुक्ति के लिये प्रयास नहीं करती हैं तो वे उन्हें तरह-तरह से परेशान करती हैं। जीवन में परेशानियां ही परेशानियां आकर खड़ी हो जाती हैं, परिवार में अशान्ति, संतान सुख का अभाव, आकस्मिक घटनाओं का घटना, व्यवसाय/व्यापार में असफलताएं आदि मिलने लगती हैं। परन्तु संतान के प्रयास करने से मुक्ति मिलने पर वे अपने वंश को, अपनी संतानों को आशीष देती हैं, वरदान देती हैं। आप भी अपने पितरों से आशीष प्राप्त करें। इस माह में सर्वपितृ अमावस्या है अतः अपने पितरेश्वरों को श्रद्धा पूर्वक याद करें। उन्हें जल अर्पण करें। मंत्र साधना पूर्ण होने पर तीन लोटे जल आकाश की ओर मुंह कर तर्पण करना चाहिये। इस प्रकार आपके पितरों को शान्ति मिल जायेगी, उनकी भटकती हुए अतृप्त आत्मा तृप्त हो जायेगी और मोक्ष को प्राप्त होगी और प्रसन्न होकर आपको आशीष देगी, जिससे आपके जीवन की समस्याएं समाप्त हो जायेंगी।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

श्रीमती इन्दू श्रीमाली